मैं कौन हूँ?

(मुनिराज श्री नित्यानंद विजयजी महाराज)

वादों तथा विवादों से घिरा मानव अपने जीवन की कई गुत्थियां हल करने के लिए प्रयत्नशील है। उसका स्वयं के बारे में भी भ्रमपूर्ण चिन्तन है। वह आसमान में बादल के छोटे से टुकड़े को देख कर पूरे आसमान का विशिष्ट ज्ञान हो जाने का भ्रम पाले हुए है। अनन्त आकाश गंगा की असीम क्षमताओं को अपनी मुट्ठी में बंद कर लेने की भ्रामक स्थिति में वह जी रहा है। वह स्वयं के साथ धोखा कर रहा है। स्वयं के प्रति ही विश्वासघात की कृत्रिम स्थिति उसने उत्पन्न कर रखी है। वह कुए के मेंढक की तरह उछलता है तथा पूरे महासागर की सीमाएं नापने का दावा करता है। इस कारण उसे स्पष्ट नहीं हो पा रहा है कि उसकी स्वयंकी दिशा क्या है? उसकी आत्मिक स्थिति क्या है?

व्यक्ति का अपने आपके प्रति भ्रमित रहना ही सर्वाधिक विस्फोटक स्थिति है। व्यक्ति समझ ही नहीं पाता कि वह क्यों जी रहा है? क्या जन्म लेना और मृत्यु को प्राप्त करना, उसके लिए कोई बाध्यता है? क्या ऐसा करना उसके लिए किसी विजातीय शक्ति के कारण अनिवार्यता है? क्या वह अपने आपको इस दुष्चक्र से उबार नहीं सकता? क्या मानव जानता है कि उसकी अपनी शक्ति इन सभी भ्रमजालों को तोड़कर आत्माको उच्च्व स्थिति तक पहुंचा पाने में सक्षम है? उत्तर सकारात्मक प्राप्त होंगे। वह भेड़ोंकी रेवड़ में भरती हो जाने के कारण अपने शक्तिमान सिंह स्वरूप को विस्मृत कर गया है। उसे आभास ही नहीं होता कि भेड़ों के साथ रहना, उसकी मूल स्थिति नहीं है। अपने आपको भूला होने के कारण वह अपने अस्तित्व को संकटों में फंसाए हुए है।

जीवन के जिन मूल्यों के प्रति मानव को आत्मार्पित होना चाहिए, वे मूल्य स्पष्ट नहीं हैं। आज का मानव न जाने क्यों भौतिकता की अंधी आंधी में भटकता जा रहा है। उसका आकर्षण आत्मिक सुख नहीं, भौतिक आशंसाएं बन गया है। इन्द्रियों के सुखों के लिए नित नए आविष्कारों में जुटा हुआ है। भौतिक समृद्धि को उसने जीवन का रहस्य मान लिया है। भौतिकता में उसे क्षणिक सुख की अनुभूति होती है। वह नहीं समझ रहा कि जो नाशवान है, उसमें रुचि बनाना व्यर्थ है। शरीर उसका अपना नहीं है, इन्द्रियां उसकी सहायक मित्र नहीं हैं। जिस दिन शरीर मिटनेवाला है, वही उसकी यात्रा का अन्तिम पड़ाव नहीं है। वह तो नए भव का प्रारंभ है। एक भव का अन्त दूसरे भवके श्रीगणेश का संकेत है। एक भव की समाप्ति के बाद उसे दूसरे भवकी ओर बढ़ना ही है। भवों—भवों का परिभ्रमण उसकी यात्रा की सफलता नहीं है। शरीर का बनना या मिटना सिर्फ पुद्गल का परिवर्तन है। जो उसका अपना नहीं है, उसके प्रति आसक्ति जाग्रत हो जाने के कारण यह भ्रमपूर्ण स्थिति है।

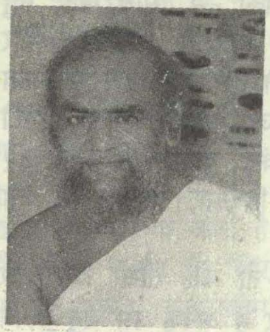

श्री नित्यानंदविजयजी म.

प्रश्न यह उठता है कि यह जानते बूझते हुए भी कि मानव अपनी धरोहर के रूप में जिसे मान रहा है, वह उसकी अपनी वास्तविक धरोहर नहीं है, वह एक दिन धोखा देने वाली है, मानव क्यों उसके प्रति बावला है? स्पष्ट है कि अनादिकाल से चली आ रही हमारी आत्मा जिन कुसंस्कारों में रुचि बनाए रखने की आदी बन गई है, वे कुसंस्कार ही उसे अच्छे लगने लगे हैं। इन्द्रियां क्षणिक सुखों के प्रति मोहित है। ऐसे क्षणिक सुख जिनकी परम्परा दुःखों से पूर्ण है तथा जिनका परिणाम दुःख है। विष्ठा का कीड़ा विष्ठा की गंदगी में ही आनंद मनाता रहता है। यही स्थिति हमारी है, कुसंस्कारों की हमारी पूर्व प्रवृत्तियां कुसंस्कारों से हमें अलग नहीं होने देती। जब हमारे पूर्व में बंधे कर्मों का उदय होता है और उससे हमें फल मिलता है, तब हम अपने पुरुषार्थ का सम्बल देकर उस फल का स्वाद लेते हुए प्रसन्न होते हैं। हमारी यह प्रसन्नता ही हमारे अपने स्वयं के प्रति किया गया धोखा है। इसी भ्रम के कारण हम सही दिशा को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। सुख तथा दुःख की भेद रेखा का स्पष्ट अन्तर कर पाने में हम विवेकहीन बनते जा रहे हैं। इन्द्रियां हमारी मित्र नहीं हैं, अपना आत्म पुरुषार्थ कर हम उन्हें अपना मित्र बना सकते हैं लेकिन बनाने की इच्छा तक का हममें अभाव है। इन्द्रियों को मनमाना व्यवहार करते रहने देने के कारण इन्द्रियजन्य सुखों की विस्फोटक परिणति समझ पाने में हम विफल हैं। फिर अनादिकाल से बुरी प्रवृत्तियों में सुख की अनुभूति करने की हमारी आदत ही हमारे विकास के मार्ग में आड़े आ रही है।

मानव घिरा हुआ है। वह कुप्रवृत्तियों में नजरबंद सा है। वह स्वस्थ श्वास लेने तक में अपने आपको अक्षम पा रहा है। भौतिक साधनों की बहुलता उसकी दृष्टि को आध्यात्मिक

(शेष पृष्ठ ४ पर)

राग द्वेष हो चित्त में, अन्तर भरा अज्ञान ।
जयन्तसेन दूषित मन, पाता कब सद्ज्ञान ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org